Volume: 1 Issue: 1 Pages: 101-103

International Journal of Research in Academic World

E-ISSN: 2583-1615
Impact Factor: 3.133

Received: 08/August/2021 Int. J Res. Acad. World. 2021; 1(1):101-103 Accepted: 15/September/2021

कथक की प्राचीन परम्परा के नृत्तांग में ताल पक्ष

*[1]डॉ. जितेश गड़पायले

*[1]सहायक प्राध्यापक, कथक नृत्य विभाग, नृत्य संकाय, इं.क.सं.वि.वि. खैरागढ, छत्तीसगढ़, भारत।

सारांश

यह शोध पत्र कथक नृत्य शैली के नृत्तांग (शुद्ध, भावविहीन अंग संचालन) में ताल पक्ष की महत्ता पर केंद्रित है। कथक की परम्परा लगभग तीन हजार वर्ष पुरानी है। नृत्तांग को नृत्यकला का प्रथम रूप माना गया है, जिसका विकास ताण्डव और लास्य के उपरांत कुशीलव तथा चारण संज्ञक नटों द्वारा एक स्वतंत्र शैली के रूप में हुआ।

नृत्तांग, जिसका अर्थ है ताल और लय के अनुसार सौन्दर्यपूर्ण अंग संचालन, कथक प्रदर्शन का एक बड़ा हिस्सा होता है। कथक ताल प्रधान नृत्तांग के लिए प्रसिद्ध है, जिसमें नर्तक उठान, ठाट, आमद, तोड़े–टुकड़े, परन, परमेलु व तत्कार का प्रदर्शन करते हैं, मुख्य रूप से त्रिताल में।

रायगढ़ के राजा चक्रधर सिंह ने ताल पक्ष को विशेष महत्व दियाय उन्होंने श्तालतोय निधिश जैसे महाग्रंथ की रचना की, जिसमें 1 से 380 मात्रा तक की तालों का वर्णन है।

जयपुर घराने की कला में नृत्तांग का विकास तत्कार (पैरों का संचालन) के रूप में हुआ है। तत्कार को नृत्तांग का प्रथम और प्राणभूत तत्व माना जाता है। इसमें पैरों से ताल वाद्यों के बोलों की तरह लय, चाल और गतियों का प्रदर्शन किया जाता है। नृत्तांग की मौलिक विशेषता जटिल ताल पक्ष (छंद, लयें, बोल बंदिश, तत्कार) है, जो इसे अन्य शास्त्रीय नृत्यों से अलग करती है। इसकी विरल चपलता ही सहज लोकप्रियता का आधार है।

मुख्य शब्दः संस्कृति की धारा, पुरानी सुदीर्घ परम्परा, ताण्डव–लास्य कुशीलव चारण संज्ञक नटो का स्वतंत्र शैली के रूप में विकसित नृत्यकला।

प्रस्तावना

भारत में कथक की लगभग तीन हजार वर्ष पुरानी सुदीर्घ परम्परा है। प्राचीन परम्परागत शास्त्रीय नृत्यों की श्रृंखला में कथक का प्रमुख स्थान है। ताण्डव और लास्य के उपरांत कुशीलव तथा चारण संज्ञक नटों द्वारा स्वंतत्र शैली के रूप में विकसित यह भारतीय नृत्यकला का प्रथम नृत्य रूप है। प्रत्येक युग की सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों के अनुरूप रंगारंग स्वरूप धारण कर यह विकसित होता रहा है। इसमें ताण्डव की उद्वत चारियां भी हैं और लास्य का ललित अंगहार भी। नृत्त ताललयाश्रयम् अर्थात ताल और लय के अनुसार भावविहीन किन्तु सौन्दर्यपूर्ण अंग संचालन की क्रिया नृत्तांग कहीं जाती है। नृत्तांग में शुद्ध हस्तक व पैरों का संचालन विभिन्न लयों में होता है। इसमें नर्तक के अंग संचालन का उद्देश्य कोई रस या भाव को अभिव्यक्त करना नहीं होता है बल्कि सिर्फ विभिन्न लयों की विविधता और आकृतियों को जगह, समय व गतियों द्वारा प्रदर्शित करना होता है। यों तो प्रायः समस्त शास्त्रीय नृत्य शैलियों में किसी न किसी रूप में नृत्त का प्रदर्शन होता है किंतु वर्तमान कथक नृत्य शैली में इसे सर्वाधिक महत्ता प्राप्त है। कथक नृत्य प्रथम खण्ड आदिकाल से 10 शताब्दी व द्वितीय खण्ड 10वीं शताब्दी से वर्तमान तक है।

1. भावाभिनहीनं तु नृत्तमित्यभिधीयते।

आर्य सभ्यता के साथ कला व संस्कृति की धारा उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित हुई है। यह प्रयोग प्रधान अर्थात् प्रायोगिक कला है। भरत मुनि ने नृत्त की शिक्षा शिवजी से प्राप्त की थी। नृत्त अंगों की सौन्दर्यमयी भाषा है।

2. प्रोण सर्वलोकस्य नृत्तमिष्ट स्वभावतः मंगल्यमिति कृत्वा च नृत्तमेत त्प्रकीर्तितम।

शिवजी के तांडव के ता तथा पार्वती जी के लास्य से ल अर्थात ताल का निर्माण हुआ। किसी भी कथक नृत्य प्रदर्शन का तीन चौथाई भाग और कभी–कभी सम्पूर्ण प्रदर्शन इसी नृत्त भाग से आवृत्त रहता है।

3. नृत्तांग के हम में जब नृत्यकार कोई टुकड़ा नाचकर सम पर सलाम करने का भाव दिखाता है।

कथक ताल प्रधान नृत्तांग के प्रदर्शन के लिए सदा से ही प्रसिद्ध रहा है। नृत्तांग के अन्तर्गत कथक नर्तक किसी भी ताल में उठान, ठाट, आमद, तोड़े–टुकड़े, परन, परमेलु व

*Corresponding Author: डॉ. जितेश गड़पायले

तत्कार का प्रदर्शन करते हैं। सामान्यतः कथक नर्तक त्रिताल में ही नृत्तांग का प्रस्तुतिकरण करते हैं या विविधता की दृष्टि से कभी–कभी झपताल, धमार, एकताल, पंचमसवारी या चौताल आदि में भी नृत्त करते हैं। राजा चक्रधर सिंह जी की रूचि का मुख्य विषय ताल पक्ष था। उन्होंने तालतोय निधि जैसे महाग्रन्थ का प्रणयन विभिन्न आचार्यों व उस्तादों से प्राप्त बोलों व बंदिशों के आधार पर किया है। इसमें 1 मात्रा से लेकर 380 मात्रा तक की तालों का चक्र सहित वर्णन है। इसी के अन्तर्गत 16 बंदिशों का प्रदर्शन विभिन्न मात्राओं से क्रमशः 1 से 16 मात्रा तक। पाँच तालों दादरा, तीनताल, झपताल, सूलताल, एक ताल, चौताल, पंचम सवारी में गिनने पर एक साथ सभी तालों में सम पर ही आएंगी। इन बंदिशों की यही विशेषता है कि यह बंदिश बिना किसी लय को परिवर्तित किये तथा बिना किसी बोल के परिवर्तित किये एक साथ 7 तालों में सम पर आती है। दर्शक चाहे झपताल के मात्रा गिने, एकताल के गिने, पंचमसवारी गिने या तीनताल की मात्राएं गिन सकते हैं। यह वाकई कमाली चक्करदार फारमाईशी अप्रचलित बंदिश है। कथक के क्षेत्र में राजा चक्रधर सिंह का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। रायगढ़ की नृत्य परम्परा में ताल पक्ष को आधार बना कर मैं कई शास्त्रीय पक्ष व दुर्लभ लक्षणों को प्रयोग पक्ष द्वारा प्रदर्शित किया। इस शताब्दी में राजा चक्रधर सिंह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कथक को सम्पूर्ण रूप में ग्रहण करने का प्रयास किया और एतदर्थ कथक की विभिन्न परम्पराओं के आचार्यो को अपने यहां आमंत्रित कर उनसे अपने आश्रित कलाकारों को शिक्षा दिलवाई और अपनी परिकल्पनाओं को साकार करने का प्रयास किया।

कथक के नृत्तांग में मुख्य रूप से किसी ताल को आधार बनाकर विभिन्न प्रकार के 'ताल–प्रबन्धों' (बोल–बंदिश, तत्कार आदि) की प्रस्तुति की जाती है। वर्तमान कथक के नृत्तांग का परन एक अपरिहार्य भाग है जिसे सभी घरानों में नाचा जाता है।

4. पखावज के बोलो की बंदिशों को ही परण कहते है।

ये परनें विशिष्ट बोलों की होती हैं जैसे – दुपल्ली, तिपल्ली, चौपल्ली, कमाली आदि। दुपल्ली, तिपल्ली, चौपल्ली, दुधारी, आड़ी, कमाली चक्करदार, अतीत, अनागत, अति बेदम चक्करदार, दीपचंदी छन्द की लमछड़ चक्करदार परन, चारबाग परन जैसी अप्रचलित व असाधारण तालपक्ष का प्रदर्शन होता है।

5. लमछड़ परन की विशेषता यह है कि जहां से जिस बोल से रचना शुरू होती है उसी बोल पर आकर खत्म भी हो जाती है।

रायगढ़ में राजा चक्रधर सिंह ने तबला परवावज की कई बंदिशों की कथक में शब्द रचना करी है। ये जितनी क्लिष्ट होती है उतना ही कठिन इनका प्रस्तुतिकरण भी होता है। इस प्रकार अकेले विशुद्ध नृत्त के बोलों की भी पर्याप्त विविधता, कथक में दृष्टिगोचर होती है।

नृत्त शब्द का उच्चारण करते ही सर्वप्रथम जिस क्रिया का बोध होता है वह है – पद संचालन। शास्त्रों में कहा गया है कि ष्पदाभ्यां तालमाचरेत् अर्थात् नृत्त करते समय पैरों से ताल का आचरण करना चाहिये। शास्त्रों की इस व्यवस्था का भरपूर विकास जयपुर घराने की कला में – ततकार के रूप में हुआ है।

6. ता थेई थेई तत के मूल शब्दों के आधार पर जो प्राथमिक बोल निकाले जाते है।

जैसे एक कुशल तबला वादक कायदा, पल्टा, गत, रेला, परन, लग्गी, लड़ी आदि के द्वारा ताल का प्रस्तार करता है वैसे ही जयपुर घराने के नर्तक तत्कार के पल्टे, लय बांट, बोल बांट, लयजाति, बोलजाति, जरब, क्रमलय, कायदे, तिहाईयों के प्रकार, लग्गी–लड़ी की प्रस्तुति करते हैं जो उनके नृत्तांग को चरर्मोत्कर्ष तक ले जाते हैं।

7. ततकार में नर्तक केवल पैरों के द्वारा लय के विभाजन और विविध प्रकार के चालों की गति विन्यास को सम्पन्न करता है।

नृत्तांग का यह स्पृहणीय विकास प्रधानतः गत् दो–तीन सौ वर्षों में तबला पखावज वालों से होने वाली नित्य प्रति की लाग–डांट का ही परिणाम है, जिसकी कुछ विशेषताऐं हैं और उनकी क्लिष्टता ही प्रधान गुण है।

8. ततकार पर सम्पूर्ण नृत्य आधारित होता है।

कथक में तत्कार या पैरों के काम को ताल वाद्यों की तरह विकसित किया गया है।

9. पैरों द्वारा विविध प्रकार की लय प्रस्तुति भी ततकार का विशेष अंग है।

कथक में सर्वप्रथम त्रिताल की ततकार (ता थेई थेई तत, आ थेई थेई तत) सिखाई जाती है और उसे ठाह, दुगुन, चौगुन, अठगुन आदि लयों में अभ्यास कराया जाता है फिर तत्कार के पल्टे बताए जाते हैं। तदुपरांत उसके प्रधान बोलों की पैरों से निकासी बताकर उन्हें एक–एक कर सधाया जाता है। तबला पखावज की बहुत सी चीजों को भी कथक के इस नृत्तांग में आत्मसात कर लिया गया है। अतः वाद्यों के खास–खास बोलों का भी पैरों से अभ्यास किया जाता है, जैसे धाकिटतक, धुमकिटतक, धड़न्न, धागेतिक आदि। इसके बाद जाति भेद, लयकारियां व विभिन्न तालों के बर्ताव का अवसर आता है। यहां यह ध्यान देने की बात है कि जैसे तबला – पखावज आदि वाद्यों में अलग–2 बोल की निकासी वाद्य के अलग–अलग भाग पर अलग–अलग प्रकार से चोट करने पर होती है ठीक वैसे ही कथक की ततकारों में अलग–अलग बोलों की निकासी पैर या पथगली के अलग–अलग भाग से अलग–अलग तरीके से जमीन पर चोट करने से होती है।

10. कथक के नृत्तांग का प्रथम एवं प्राणभूत तत्व।

नृत्तांग में घुंघरू ध्वनि की मधुरता या कर्णप्रियता तथा

काल की नियमित गति या लय को ही विशेषताओं के रूप में देखा जाता है। नृत्तांग का सौन्दर्य है कि उसका तालांग नियमबद्ध होकर भी एक पूर्ण स्वतंत्र कला है यानि अनुशासन और स्वतंत्रता के बीच कला का रूप और अधिक निखर जाता है। नृत्तांग की नींव – पादकर्म पैरों का योग रहने से उसमें ताल, छन्द, लय की अनेक विशेषताओं का योग हो जाता है। निरंतर आगे की ओर लय तथा गति के कारण यह संगीत विशेष अपनी गतिशीलता में ही सौन्दर्य योग्य बनता है। लय–ताल अपने अनुशासन और नियमितता में ही अनियमित रहकर रसानुभूति कराती है। एक ही ताल और लय के अन्तर्गत विभिन्न लयों का प्रस्तार करना चमत्कार, सौन्दर्य तथा आकर्षण पैदा करती है। यदि किसी शब्दावली को बहुत बार दोहराया जाए तो वह एक निश्चित गति अथवा लय में अपने आप बंधती चली जाती है। इसी लय को ही छंद कहते हैं। लय के जितने भी रूप हो सकते हैं उन्हें ही हमारे यहां छंद और ताल के रूप में जाना जाता है।

निष्कर्ष

कथक के नृत्तांग में समाहित जटिल ताल पक्ष (छंद, लयें, बोल बंदिश, तत्कार) एक चमत्कारपूर्ण आभा प्रदान करता है। इनके बिना कथक के नृत्तांग की परिकल्पना ही असम्भव है। यह कथक के नृत्तांग की मौलिक विशेषता है, जो किसी भी अन्य शास्त्रीय नृत्य शैली में नहीं है अर्थात् मुख्य आधार के रूप में तालांग/ताल प्रबन्ध की प्रस्तुति ही कथक का नृत्तांग है। इस तरह कथक के नृत्तांग का सौन्दर्य उसका तालांग है व तत्कार उसका प्रथम और प्राणभूत तत्व है, शेष सब कुछ उसका आवरण है, श्रृंगार है।

कथक शैली में इस नृत्तांग को जो महत्ता प्राप्त हुई है और इसका जिस रूप में विकास हुआ है वह स्वतः में आश्चर्यजनक है। शास्त्र की सीमा में रहते हुए भी कथक के आचार्यों ने अपने इस नृत्त भाग की जिस तरह मौलिक परिकल्पना की है और उसमें नवीन तत्वों का समावेश कर उसे एक नया रूप दिया है उससे इसका सौन्दर्य सबसे अलग, अनूठा व चित्ताकर्षक बन गया है। कथक के नृत्तांग के तालपक्ष की विरल चपलता ही उसकी सहज लोकप्रियता का मुख्य आधार है – इसमें संदेह नहीं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. वाचस्पति गैरोला, भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण प्रथम भाग, पृ.क्र. 137।
2. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, भरतमुनी प्रणीतं हिन्दी नाट्य शास्त्र प्रथम भाग, पृ.क्र. 136।
3. डॉ.पुरू दाधीच कथक नृत्य शिक्षा भाग – 1, पृ.क्र. 78।
4. मांडवी सिंह, कथक नृत्य परम्परा में लच्छु महाराज, पृ.क्र. 89।
5. सुश्री प्रेरणा श्रीमाली वरिष्ठ कथक नृत्यांगना से साक्षात्कार।
6. गुरू विक्रम सिंह, नटवरी कथक नृत्य माला, पृ.क्र. 45।
7. पं. तीरथ राम आजाद, कथक दर्पण, पृ.क्र. 179।
8. डॉ.लक्ष्मी नारायण गर्ग, कथक नृत्य, पृ.क्र. 45।
9. मांडवी सिंह, कथक परम्परा में गुरू लच्छु महाराज, पृ.क्र. 90।
10. डॉ. पुरू दाधीच, कथक नृत्य शिक्षा भाग–2, पृ.क्र. 139।